प्रमेयकमलमार्तण्डका सम्पादन : एक समीक्षा

• डॉ० फूलचन्द जैन प्रेमी, वाराणसी

किसी भी प्राचीन ग्रन्थका उद्धार करके उसका साङ्गोपाङ्ग सम्पादन और प्रकाशन अति दुष्कर कार्य है। किन्तु जिस विद्वान्ने विविध कठिनाइयोंके बाद भी अनेक प्राचीन दार्शनिक दुर्लभ एवं जटिल बृहद् ग्रन्थोंका सम्पादन-कार्य किया हो उसके अद्भुत वैदुष्य, प्रतिभा, श्रम-साधना और अदम्य उत्साहके विषयमें जितना लिखा जाए, कम ही होगा। ऐसे विरले ही साहित्य-साधक होते हैं जिन्होंने अपने अल्प जीवनकालमें ही इतने विस्तृत, विपुल एवं कठिन अनेक जैन दार्शनिक ग्रन्थोंको सुसम्पादित करके जैन साहित्यकी सेवामें अपनेको समर्पित कर दें। किन्तु डॉ० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्यने यही सब करके स्वयंको जैन दार्शनिकोंकी गौरवशाली परम्परामें सम्मिलित कर लिया है। आपके द्वारा सम्पादित अनेक ग्रन्थोंकी शृंखलामें प्रमेयकमलमार्त्तण्ड ग्रन्थके सम्पादन-कार्यकी समीक्षा प्रस्तुत है—

समृद्ध भारतीय मनीषाकी प्रत्येक परम्परामें उपलब्ध प्राचीन सूत्रग्रन्थोंपर अनेकानेक व्याख्यायें प्राप्त होती हैं। जैन परम्पराके आद्य संस्कृत सूत्रग्रन्थकी तरह जैनन्यायके आद्य सूत्रग्रन्थ आचार्य माणिक्यनन्दि (आठवीं शती) प्रणीत "परीक्षामुखसूत्र" पर भी अनेक टीकायें लिखीं गईं। किन्तु इन सभी टीकाओंकी यह एक अन्यतम विशेषता है कि ये सभी अपने आपमें स्वतंत्र ग्रन्थ प्रतीत होते हैं। इन सब टीकाओंके नाम भी अलग-अलग हैं। इनमें से कुछ तो प्रकाशित होनेके कारण प्रसिद्ध हैं तो कुछ टीकाग्रन्थ अब तक इसीलिए प्रसिद्ध नहीं हो सके क्योंकि वे अभी तक अप्रकाशित हैं। सर्वप्रथम इन सबका उल्लेख आवश्यक है।

प्रकाशित टीका-ग्रन्थ

इनके अन्तर्गत (१) आचार्य प्रभाचंद्र (११वीं शती) विरचित प्रमेयकमलमार्तण्ड अपरनाम परीक्षामुखालङ्कार, (२) आचार्य लघु अनंतवीर्य (१२वीं शतीका पूर्वार्द्ध) विरचित प्रमेयरत्नमाला (चौखम्बा-विद्याभवन, वाराणसी द्वारा सन् १९६४ में प्रकाशित), (३) भट्टारक अभिनव चारुकीर्ति (१९वीं शती) द्वारा प्रणीत प्रमेयरत्नमालालंकार (मैसूर युनिवर्सिटी द्वारा सन् १९४८ में प्रकाशित) तथा शान्ति वर्णी विरचित प्रमेयकण्ठिका (भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित) प्रमुख हैं।

अप्रकाशित टीका-ग्रन्थ

(१) भट्टारक अजितसेन (वि० सं० १९८०) प्रणीत न्यायमणिदीपिका, (२) विजयचन्द्र विरचित प्रमेयरत्नमाला अर्थप्रकाशिका, (३) पं० जयचन्दजी छावडा (वि० सं० १९वीं शती) प्रणीत प्रमेयरत्नमाला-परीक्षामुख भाषा वचनिका प्रमुख हैं। इनमें से प्रायः सभी प्रकाशित-अप्रकाशित टीकाग्रन्थोंकी हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ आरा (बिहार) के सुविख्यात जैन सिद्धान्त भवनमें सुरक्षित हैं।

प्रस्तुत समीक्ष्य ग्रन्थ प्रमेयकमलमार्तण्डका सर्वप्रथम प्रकाशन निर्णयसागर प्रेस, बम्बईसे पं० बंशीधर जी शास्त्री, सोलापुरके सम्पादकत्वमें हुआ था। इसके बाद यहींसे सन् १९४१ में द्वितीय संस्करणके रूपमें मूलग्रन्थ अनेक टिप्पणियों एवं ८३ पृष्ठीय विस्तृत सम्पादकीय वक्तव्यमें विविध दार्शनिकों एवं उनकी कृतियोंसे तुलनात्मक विवेचन, बृहद् प्रस्तावना और लगभग पचास पृष्ठीय अनेक परिशिष्टोंसे युक्त सांगोपांग प्रकाशन डॉ० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्यके सम्पादकत्वमें हुआ। यह उस समयके प्रकाशनोंमें सम्पादित आदर्श

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृति है और आज भी सम्पादनके आदर्शका एक अनुपम उदाहरण है। आचार्य प्रभाचन्द्रकी यह दार्शनिक कृति संस्कृत गद्यका भी उत्कृष्ट उदाहरण है। यह कृति अभी तक मूलग्रन्थके रूपमें ही प्रकाशित होनेसे सामान्य पाठक इसके हार्दको समझनेमें कठिनाईका सामना करते थे। किन्तु यह प्रसन्नताका विषय है कि न्यायाचार्यजी द्वारा सुसम्पादित प्रस्तुत मूलग्रन्थके आधार पर ही इसके प्रकाशनके लगभग चार दशक बाद विदुषी आर्यिका जिनमती माताजी द्वारा हिन्दी अनुवाद विशेष विवेचनयुक्त भावार्थके साथ तीन भागोंमें प्रकाशित हो जानेसे जन साधारणको इस ग्रन्थका हार्द समझना तथा विविध विश्वविद्यालयों और शिक्षण संस्थानोंके पाठ्यक्रममें अध्ययन-अध्यापन एवं अनुसंधानका मार्ग सुगम हो गया है। इतने कठिन ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद भी पं० महेन्द्रकुमारजी द्वारा सुसम्पादित प्रस्तुत कृतिके आधार पर ही सम्भव हो सका। हिन्दी अनुवाद सहित इन तीन खण्डोंका प्रकाशन वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला, हस्तिनापुरके माध्यमसे सन् १९७० से १९८६ के मध्य अलग-अलग श्रद्धालु दातारों द्वारा हुआ है।

ग्रन्थ-परिचय

आचार्य माणिक्यनन्दि प्रणीत जैनन्यायके सूत्रग्रन्थ "परीक्षामुख सूत्र" पर बारह हजार श्लोक प्रमाण "प्रमेयकमलमार्तण्ड" नामसे बृहद् टीका लिखकर आ० प्रभाचन्द्रने ग्रन्थगत मूलसूत्रोंके विषयको स्पष्ट और विस्तृत विवेचित तो किया ही, अपनी अनेक मौलिक उद्भावनाओंके साथ तत्कालीन प्रचलित उन सभी भारतीय दार्शनिकों और न्यायशास्त्रियोंके पक्षों एवं चर्चित विषयोंको पूर्वपक्षके रूपमें प्रस्तुत करके अनेकान्तमय प्रबल प्रमाणों द्वारा खण्डनात्मक अकाट्य उत्तरपक्ष प्रस्तुत करते हुए जैनन्यायको गौरव प्रदान किया और उसके विकासका मार्ग प्रशस्त बनाया। इसीलिए यह ग्रन्थ मात्र टीका ग्रन्थ ही न रहकर आरम्भसे ही मौलिक ग्रन्थके रूपमें भी इसकी अधिक ख्याति रही। यह ग्रन्थ अपने नामको सार्थक करते हुए प्रमेयरूपी कमलोंको उद्भासित करनेके लिए मार्त्तण्ड (सूर्य) के समान है तथा मिथ्या-अभिनिवेशरूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए भी मार्तण्ड (सूर्य) के सदृश होनेसे भी यह ग्रन्थ अपने नामको सार्थक करता है। वस्तुतः जैसे सूर्य कमलोंको विकसित करता है, वैसे ही यह ग्रन्थ समस्त प्रमेयोंको प्रदर्शित करता है।

आचार्य प्रभाचन्द्र द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थ और प्रमेयकमलमार्तण्ड आदि बारह ग्रन्थ प्रणीत होनेके उल्लेख मिलते हैं किन्तु इनकी ख्याति मुख्यतः इन्हीं दो न्याय ग्रन्थोंके कारण ही विशेष है। इन दोनों ग्रन्थोंमें ही सम्पूर्ण भारतीय दर्शनोंकी प्रायः सभी शाखाओंकी प्रमुख मान्यताओंको उनके विविध मूलभूत प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थोंके आधारपर आ० प्रभाचन्द्रने गहन अध्ययन एवं मंथन करके ही उन्हें पूर्वपक्षके रूपमें प्रस्तुत किया। प्रमेयकमलमार्तण्ड ग्रन्थ ही इतना सर्वाङ्ग परिपूर्ण है कि मात्र अकेले इस ग्रन्थके आधारपर ही सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय दर्शनोंको समझा जा सकता है। जबकि इस ग्रन्थका प्रमुख उद्देश्य मुख्यतः प्रमाण-तत्त्वका विवेचन है।

सम्पादन-कार्यकी विशेषतायें

डॉ० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य द्वारा सम्पादित प्रमेयकमलमार्तण्डका प्रस्तुत संस्करण श्रेष्ठ एवं आदर्श सम्पादनकलाका एक कीर्तिमान उदाहरण है। पं० जी द्वारा सम्पादित प्रस्तुत ग्रन्थका जिसने भी अध्ययन किया, पं० जी के अगाध पाण्डित्य एवं अपूर्व श्रम तथा साहित्यसाधनाकी उसने भरपूर प्रशंसा की। सर्वाङ्गीण तुलनात्मक अध्ययनकी दिशामें इस ग्रन्थकी महत्ता तो प्रत्येक पृष्ठपर उल्लिखित भरपूर पाद-टिप्पणियोंके आधारसे ही सिद्ध है। जो विद्वान् इस प्रकारके सम्पादन-कार्यमें गहरी रुचि रखते हैं, इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकारके कार्योंको ईमानदारीसे सम्पादित करनेमें ही विश्वास रखते हैं वे पं० महेन्द्रकुमारजीकी सारस्वत साधनासे प्रसूत इस अप्रतिम कृतिका एक आदर्श कृतिके रूपमें मूल्यांकन किये बिना नहीं रह सकता। पं० जीने स्वयं इसके सम्पादकीय आद्य वक्तव्यमें प्रस्तुत संस्करणकी विशेषताओंका उल्लेख करते हुए लिखा है—

जब न्यायकुमुदचन्द्रका सम्पादन चल रहा था तब श्रीयुत कुन्दनलालजी जैन तथा पं० सुखलालजी संघवीके आग्रहसे मुझे प्रमेयकमलमार्त्तण्डके पुनः सम्पादनका भी भार लेना पड़ा। इसके प्रथम संस्करणके संपादक पं० बंशीधरजी शास्त्री, सोलापुर थे। मैंने उन्हींके द्वारा सम्पादित प्रतिके आधारसे ही इस संस्करणका सम्पादन किया है। मैंने मूलपाठका शोधन, विषय वर्गीकरण, अवतरण निर्देश तथा विरामचिह्न आदिका उपयोगकर इसे कुछ सुन्दर बनानेका प्रयत्न किया है। प्रथम तो यही विचार था कि न्यायकुमुदचन्द्रकी ही तरह इसे तुलनात्मक तथा अर्थबोधक टिप्पणोंसे पूर्ण समृद्ध बनाया जाय, और इसी संकल्पके अनुसार प्रथम अध्यायमें कुछ टिप्पण भी दिये गए हैं। ये टिप्पण अंग्रेजी अंकोंके साथ चालू टिप्पणके नीचे पृथक् मुद्रित कराए हैं। परन्तु प्रकाशककी मर्यादा, प्रेसकी दूरी आदि कारणोंसे उस संकल्पका दूसरा परिच्छेद प्रारम्भ नहीं हो सका और यह प्रथम परिच्छेदके साथ ही समाप्त हो गया। आगे तो यथासंभव पाठशुद्धि करके ही इसका संपादन किया है।

संपादक न्यायाचार्यजीके उपर्युक्त कथनसे स्पष्ट है कि वे इसे और भी अनेक टिप्पणों, पाठभेदों आदिसे युक्त प्रकाशित करानेके इच्छुक थे किन्तु अनेक कठिनाइयोंके कारण वे ऐसा नहीं कर सके। फिर भी पं० बंशीधरजी, सोलापुर द्वारा सम्पादित प्रथम संस्करणकी अपेक्षा न्यायाचार्यजी द्वारा सम्पादित इस द्वितीय संस्करणमें अनेक विशेषतायें हैं। इनमेंसे कुछ इस प्रकार हैं—प्रस्तुत ग्रन्थका सम्पादन वैज्ञानिक विधि से अर्थात् स्पष्ट और विस्तृत विषयसूची दी गई है, अनेक परिशिष्ट दिये गये हैं और शब्दानुक्रमणिका भी है। इनसे पाठकको इतने बृहद् मूलग्रन्थमें भी सम्बद्ध विषयको खोजनेमें कठिनाई नहीं होती।

प्रमेयकमलमार्त्तण्ड ग्रन्थका दूसरा नाम परीक्षामुखालङ्कार भी है अतः तदनुरूप प्रस्तुत संस्करणमें मूलग्रन्थ परीक्षामुखके सूत्रोंको उसकी वृत्तिके पूर्व यथास्थान रखकर व्यवस्थित किया है। इससे तद-तद् सूत्रकी व्याख्याका पृथक्करण हो गया, अन्यथा कुछ पाठकोंको पता ही नहीं चल पाता था कि किस सूत्रकी व्याख्या कहाँसे प्रारम्भ है और कहाँ समाप्त है। इसी तरह प्रकरण और अर्थकी दृष्टिसे अशुद्धियोंका संशोधन भी किया गया है। यद्यपि प्रथम संस्करणमें मुद्रित टिप्पण एक ही हस्तलिखित प्रतिसे लिये गये थे। अतः उनमें कुछ-कुछ अस्तव्यस्तता और अशुद्धियाँ दिखलाई पड़तीं थीं किन्तु प्राचीन टिप्पणोंकी मौलिकताके संरक्षणके उद्देश्यसे न्यायाचार्यजीने उन्हें इस अपने संस्करणमें भी यथावत् रहने दिया किन्तु साथ ही कुछ अन्य प्रतियोंके और भी टिप्पण साथमें दे दिये हैं।

प्रस्तुत संस्करणको और भी अधिक उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण बनानेके लिए न्यायाचार्यजीने जो बहुत ही श्रमसाध्य कठिन कार्य किया है, वह है विविध जैन और जैनेतर मूलग्रन्थोंके अनेकों अवतरण, जिन्हें आचार्य प्रभाचन्द्रने अपने प्रतिपाद्य विषयकी पुष्टि हेतु अपने इस ग्रन्थमें उद्धृत किया था और हस्तलिखित ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियाँ करते समय लिपिकारोंने लगभग उन्हें मूलग्रन्थमें ही सम्मिलित कर लिया था। न्यायाचार्यजीने उन अवतरणोंको अलग दिखलानेकी दृष्टिसे उन उद्धरणोंको इनवर्टेड कामा (".....") में रख कर प्रस्तुत किया है। इतना ही नहीं, जिन-जिन ग्रन्थोंके ये उद्धरण हैं, उन्हें उन-उन ग्रन्थोंमें खोजकर पृष्ठ सहित उन ग्रन्थोंके नामोल्लेख भी कोष्ठकमें कर दिये गये हैं। अज्ञात अवतरणोंके बाद खाली ब्रेकेट छोड़

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिये गये ताकि किसी विद्वान् पाठकको उस अवतरणके सही ग्रन्थ और ग्रन्थकारका नाम पता हो तो वहाँ उसे लिख सके और सम्पादकको भी सूचित कर सके ताकि आगेके संस्करणोंमें उन्हें सम्मिलित किया जा सके।

इन ग्रन्थकी ७८ पृष्ठीय विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावनामें पं० जीने जहाँ मूलग्रन्थकार आ० माणिक्यनन्दि एवं आ० प्रभाचन्द्रके व्यक्तित्व एवं कृतित्वपर व्यापक रूपमें प्रकाश डाला है वहीं जैनेतर एवं जैन पूर्ववर्ती एवं परवर्ती अनेक भारतीय दार्शनिकों एवं उनके ग्रंथोंसे प्रमेयकमलमार्त्तण्डके प्रतिपाद्य विषयकी जो तुलना, प्रभाव एवं समीक्षा प्रस्तुत की है वह अपने आपमें तुलनात्मक अध्ययन एवं अनुसंधानकी दृष्टिसे बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, महाभारत, गीता, पतञ्जलि, भर्तृहरि, व्यासभाष्य आदि ग्रन्थोंके जिन अंशोंको आ० प्रभाचन्द्रने उद्धृत किया है, उन सन्दर्भोंको तथा सांख्य आदि दार्शनिकोंके सन्दर्भोंको भी सम्पादकजीने उद्धृत किया है। इस कार्यसे अनेक ऐसे ग्रन्थ, ग्रन्थकार एवं ऐसे सन्दर्भ प्रकाशमें आये हैं जो अब उपलब्ध नहीं होते। जैसे प्रशस्तपाद (कणादसूत्र भाष्यकार—ई० पाँचवीं शती) के ईश्वरवादके पूर्वपक्षमें प्रमेयकमलमार्त्तण्डके पृ० २७० पर 'प्रशस्तमतिना च" लिखकर "सर्गादौ पुरुषाणां व्यवहारो" इत्यादि अनुमान उद्धृत किया है। किन्तु यह अनुमान प्रशस्तपादभाष्यमें नहीं है। इसी तरह आ० प्रभाचन्द्रने न्यायकुमुदचन्द्रमें सांख्यदर्शनके कुछ ऐसे वाक्य और कारिकाएँ उद्धृत की हैं जो उपलब्ध ग्रन्थोंमें प्राप्त नहीं होतीं।

प्रशस्तपादभाष्यके पुरातन टीकाकार आ० व्योमशिवकी व्योमवती टीकामें प्रतिपाद्य अनेक मतोंका आ० प्रभाचन्द्रने खण्डन किया है। आ० प्रभाचन्द्रके इन उल्लेखोंसे व्योमशिवके सही काल-निर्धारणमें बहुत सहायता प्राप्त हुई है। इसी तरह उद्योतकर, जयन्तभट्ट, वाचस्पति, शबरऋषि, कुमारिल, मण्डनमिश्र, प्रभाकर, शङ्कराचार्य, सुरेश्वर आदि वैदिक दार्शनिकों तथा अश्वघोष, नागार्जुन, वसुबन्धु, दिङ्नाग, धर्मकीर्ति, प्रभाकर गुप्त, शान्तरक्षित, कमलशील, अर्चट, धर्मोत्तर और ज्ञानश्री जैसे बौद्धदार्शनिकों तथा दिगम्बर एवं श्वेताम्बर जैन परम्पराओंके पचाससे भी अधिक ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारोंसे आ० प्रभाचन्द्र द्वारा लिखित एवं उद्धृत ग्रन्थगत विषयकी महत्त्वपूर्ण समीक्षा की गई है। यह बृहद् प्रस्तावना फाल्गुन शुक्ला द्वादशी वीर निर्वाण संवत् २४६७ के आष्टाह्निक पर्वमें पूर्ण हुई।

इस महत्वपूर्ण प्रस्तावनाके बाद न्यायप्रवेश, न्यायबिन्दु, न्यायविनिश्चय, न्यायसार, न्यायावतार, प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कार, प्रमाणपरीक्षा, प्रमाणमीमांसा, प्रमाणसंग्रह, लघीयस्त्रय स्ववृत्ति इत्यादि अनेक ग्रन्थोंसे परीक्षामुख सूत्रोंकी तुलना प्रस्तुत की गई है। इससे इन ग्रन्थगत सूत्रोंके बिम्ब-प्रतिबिम्ब भावका स्पष्ट बोध होता है।

ग्रन्थके अन्तमें परीक्षामुख सूत्रपाठ, प्रमेयकमलमार्त्तण्डगत अवतरणों, परीक्षामुख एवं प्रमेयकमलमार्त्तण्डके लाक्षणिक शब्दों, उल्लिखित ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों, विशिष्ट शब्दोंकी सूची और सबसे अन्तमें आरा के जैन सिद्धान्त भवनकी हस्तलिखित प्रतिके पाठान्तर—ये सब शोधपूर्ण परिशिष्ट प्रस्तुत किये गये हैं।

६९४ पृष्ठीय मूलग्रन्थमें प्रत्येक सूत्रका जिस तरह विषयका स्पष्ट प्रतिपादन और पूर्वपक्ष एवं उत्तरपक्षके विविध प्रमाण उद्धृत करते हुए उनका विशद विवेचन, साथ ही सन्दर्भ और कठिन शब्दोंको स्पष्ट करनेके लिए जो टिप्पण दिये गये हैं—ये सब विषयको समझनेका मार्ग प्रशस्त करते हैं।

इस प्रकार प्रमेयकमलमार्त्तण्डके उत्कृष्ट सम्पादन-कार्यसे जहाँ इस ग्रन्थकी महत्ता और उपयोगिता प्रकाशमें आई है, वहीं सम्पूर्ण भारतीय दार्शनिक क्षेत्रने भी इसका बहुमानपूर्वक मूल्यांकन किया। इस कार्य से डा० महेन्द्रकुमारजीमें भी विद्वत्ता, सम्पादन-पटुता, अन्यान्य दर्शनोंका गहन अध्ययन एवं उनके प्रति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समादर दृष्टि और तुलनात्मक अध्ययन एवं अनुसंधानकी व्यापकता, विशेषताओंका सागर हिलोरें लेता दिखलाई पड़ता है जो किसी भी विद्वान्के मनमें उनके प्रति गौरव और आदरके भाव उत्पन्न करनेके लिए पर्याप्त है। वस्तुतः प्रस्तुत ग्रन्थ तथा अन्य अनेक ग्रन्थोंके सम्पादन कार्य, मौलिक चिन्तन और लेखन कार्यों के मूल्यांकनने श्रेष्ठ भारतीय दार्शनिकोंकी पंक्तिमें सम्मिलित न्यायाचार्य जी एक प्रकाशमान नक्षत्रकी तरह दिखलाई देते रहेंगे।

●

डॉ० महेन्द्रकुमारजी द्वारा सम्पादित न्यायकुमुदचन्द्र

• डॉ० जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर

पण्डित महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य प्राचीन संस्कृत ग्रंथोंके सम्पादन-कार्यमें निपुण थे। उनके द्वारा प्राचीन आचार्योंकी हस्तलिखित जैन न्याय विषयक अनेक कृतियोंका उद्धार हुआ है। उन्हींमें-से आचार्य अकलंकदेव द्वारा रचित लघीयस्त्रयकी कारिकाओंपर आचार्य प्रभाचन्द्र द्वारा रचित लगभग बीस सहस्र पद्य प्रमाण न्यायकुमुदचन्द्र नामक टीकाका सम्पादन एवं संशोधन उनके जैन एवं जैनेतर न्याय विषयक ज्ञान का उद्घोष करता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ श्री माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, बम्बईसे सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं० नाथूराम जी प्रेमीके मन्त्रित्व कालमें सन् १९३८ एवं १९४१ में क्रमशः दो भागोंमें ३८वें एवं ३९वें पुष्पके रूपमें प्रकाशित हुआ है।

न्यायकुमुदचन्द्रके सम्पादन एवं संशोधनमें आदरणीय पण्डितजीके द्वारा जैन एवं जैनेतर ग्रन्थोंसे लिये गये विविध टिप्पण सम्पादनका मूल हार्द हैं। इन टिप्पणोंके माध्यमसे अनेक दार्शनिक एवं ऐतिहासिक गुत्थियोंका स्पष्टीकरण तो हुआ ही है, साथ ही समालोचनात्मक अध्ययन करनेवाले शोधी-खोजी विद्वानों के लिए बहुमूल्य शोधात्मक सामग्री प्रस्तुत की गई है। इन टिप्पणोंसे एक अन्य लाभ यह हुआ है कि अनेक आचार्योंके काल निर्धारणमें पर्याप्त सहायता मिली है और लेखन शैली तथा विद्वानों/आचार्यों द्वारा परस्पर आदान-प्रदान की गई सामग्रीका आकलन हुआ है।

मूल ग्रन्थमें अनेक आचार्योंके नामोल्लेखपूर्वक आये हुये उद्धरणोंके माध्यमसे अनेक विलुप्त ग्रन्थों एवं उनके लेखक आचार्योंका पता चला है। इस प्रकार न्यायकुमुदचन्द्रके सम्पादनके व्याजसे समस्त दर्शनों एवं न्याय विषयक विविध प्रस्थानोंका एक ही स्थानपर अच्छा मेल हुआ है। अतः इस ग्रन्थका टिप्पणों सहित अध्ययन करनेसे समग्र भारतीय दर्शनों एवं न्याय विषयक मान्यताओंकी अच्छी जानकारी मिलती है।

सम्पादनकी प्रामाणिकताके लिए आदरणीय पण्डितजीने हस्तलिखित मूल ग्रन्थके एक पृष्ठकी फोटो प्रति भी ग्रन्थमें मुद्रित कराई है।

उपर्युक्त विशेषताओंके अतिरिक्त इस ग्रन्थके प्रारम्भमें प्रथम भागमें स्याद्वाद महाविद्यालय, काशीके पूर्व प्राचार्य एवं जैन जगत्के विश्रुत विद्वान् पं० कैलाशचन्द्र शास्त्रीके द्वारा लिखित प्रस्तावनामें सिद्धि-विनिश्चय एवं प्रमाणसंग्रहका परिचय तथा न्यायकुमुदचन्द्रकी इतर दर्शनोंके ग्रंथोंके साथ तुलना जैसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org